कविता में बाजारवाद
(सन्दर्भ – कुमार अम्बुज की कविताएं)

अन्नपूर्णानन्द शर्मा

समाज ओर जीवन के प्रति रचनाकार का स्वतंत्र दृष्टिकोण होता है। वह अपने सामाजिक जीवन में घटित होने वाले प्रत्येक कार्यकलाप को सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए देखता रहता है और अपनी कलम के जरिए समाज के नागरिकों को जागरित करने का प्रयास करता है। जब परिवेश की घटनाएं उसे बहुत अधिक आंदोलित कर उद्वेलित करने लगती है, तो वह एक मुहिम का मानस बनाकर अपने विचारों को जनता के समक्ष विस्तारित करता रहता है, जो धीरे – धीरे एक विचारधारा का स्वरूप निर्माण करती है, और जनता के सार्वजनिक जीवन में आन्दोलन का सूत्र स्थापित करते हुए आमजन को जीवन के प्रति आशान्वित बनाती रहती है। कविता की यही सामाजिक उपादेयता भी मानी जाती है कि वह जन को जाग्रत करते हुए अपने दायित्व को निर्वहन करे।

सारा संसार आज बाजार है, व्यापार केन्द्र है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप पूरे जमाने में जड़ जमा रहे बाजारवाद ने आज सामाजिक जीवन को सभी तरह से संकटग्रस्त बना दिया है। केवल बेचना और खरीदना ही आज का युग धर्म हो रहा है। बाजारवाद के मुनाफा बटोरने की नीति से उत्पन्न उपभोक्तावादी संस्कृति, विज्ञापनवादी संस्कृति, प्रोद्योगिकी संस्कार आदि ने हमारी भारतीय संस्कृति और निजी पहचान का मिटा कर मनुष्य को गहन अन्धकार में पछीटने को तैयार किया जा रहा है। मानव उसकी निजी संवेदना खोकर आत्मकेन्द्रित रह गया है। इतना ही नहीं वह वस्तु के रूप में तब्दील हो गया है। व्यक्ति से वस्तु हो जाने की नियति की स्थिति को स्वीकार करते हुए आज हम प्रायः क्रेता या विक्रेता की संज्ञाओं में सीमित होने के लिए अभिषप्त है। कुमार अंबुज ने अपनी कविताओं में बाजार के मनमोहक मायाजाल में फंसते मानव का चित्रण करके बाजार के वाणिज्य तंत्र का सटीक चित्रण किया है। कवि ने वैश्वीकरण के सुपर बाजार में घुसने के लिए ललचाए हुए मानव का चित्रण करके विलुप्त मानवीयता तथा जर्जर होती जा रही हमारी संस्कृति का जिक्र किया है।

अम्बुज के ***क्रूरता*** में संकलित **बाजार** नामक कविता का एक उदाहरण जिसमें कवि की दृष्टि बाजार में जहां कहीं भी जाती है, वहां भीड़ ही भीड़ नजर आने लगती है। चाहे वह दुकान हो, जनरल कॉस्मेटिक शॉप हो, मेडिकल शॉप हो, कपड़े की दुकान हो, मंडी हो या अन्य कोई स्थान सब जगह केवल संवेदनहीन भीड़, अबोध भीड़।

कवि के अनुसार बाजार ऐसी ताकत के साथ मानव पर हमला करता है कि मानव अपनी उपयोगिता से परे संवेदनहीन होकर बस केवल खरीदारी की ओर मोहित होने लगता है –

दुकानें अपनी मस्ती में थी

और सजी हुई थीं जवान स्त्रियों की तरह

वहाँ लोग उठाए हुए थे बहुत सा सामान

अभी कितना कुछ बचा है खरीदने के लिए

ऐसा भाव उनके पसीने से लथ पथ शरीर से टपक रहा था

वे बाजार बंद हो जाने की आशंका में कह रहे थे भागमभाग। ***1***

कुमार अम्बुज की कविता हमारे समय की अनेक सामयिक घटनाओं को खुली अभिव्यक्ति प्रदान करती है। उनकी ***एक बार फिर*** कविता तेजी से बाजार बनने वाली दुनिया की तस्वीर प्रस्तुत करती है। बाजार अब मानवीय जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। कवि देखते हैं, कि बचपन के मैदान, सबसे प्रिय बैठने के स्थान तथा कुदरती जगहें सभी अब दुकानों

में बदल गई है। जिस स्थान से होकर माचिस खरीदनें के लिए दो मील जाना पड़ता था वह जगह भी बाजार में परिवर्तित हो गई है। इस प्रकार समाज में बाजार का बनना दुनिया की दिनचर्या में प्रतिपल होने वाली एक मामूली सी घटना बन गई है –

हर कदम पर देखते हुए बाजार

गुजरते हुए हर क्षण एक न एक बाजार से

हम भूलते हैं अक्सर

कि कब बाजार में हैं और कब बाजार में नहीं

जहाँ जरा भी आजादी, वहीं दिख जाता बाजार

देखते हैं कि फिर कि जहाँ दो जन हुए इकट्ठे

वहीं हो जाता बाजार

अब बाजार का बनना इस दुनिया की दिनचर्या में

हर पल होने वाली एक मामूली सी घटना। ***2***

बाजार की चकाचौध से आकर्षित होने वाले लोगों को यह भरोसा है कि बाजार जीवन की एक चमकती दुनिया है। आम जन इस चमक की प्रभा में अपना जीवन उद्देश्य ढूंढता है। वह मानवीय संवेदना को खोजता है। वह उसक प्रेम और आनंद की अभिलाषा में जीवन भर बाजारों में अपना जीवन खपाकर भी अपनी संतुष्टि के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाता। अंत में उसे यह ज्ञात होता है कि बाजार में सिर्फ चमकती दुकानों की प्रभा है, इस जगमगाती दुकानों के बाहर की दुनिया में गहन अंधकार छाया हुआ है। उपभोक्ता अबोध है। वह बाजार की कूटनीति और तौर तरीकों से अनजान है। उपभोक्ताओं को अपनी ओर खींचना और मोहपाश में फँसाना यह बाजार का चलन है। यह बाजार पूरी दुनिया को अपने जाल में फँसाकर उपभोक्ता समुदाय का निर्माण करना चाहता है। कुमार अंबुज लिखते हैं–

कोई आपको प्रेम करेगा

कोई सुनाएगा बांसुरी

कोई आपको एक घर का वास्ता बताएगा

कोई आपके दुखते कंधे पर रख देगा हाथ

कोई बताएगा मुक्ति का मार्ग

कोई करेगा आपको युद्ध के लिए तैयार

और फिर कह देगा एक दिन कि,

यही तो है मेरा व्यापार। ***3***

यहाँ कवि ने बाजार के गूढ़ व्यापारिक तंत्र तथा दुकानदार के चाल चलन पर व्यंग्य किया है। बाजार आज पूरे विश्व का नियंता बन चुका है। बाजारवादी नीति का उद्देश्य विकसित देशों द्वारा विकासशील तथा अविकसित देशों का वाणिज्यिक लाभ लेकर उन्हें आर्थिक पराधीनता के अथाह कुएं में डालने का है। इस के लिए विश्व बाजार अथक प्रयत्न करता रहता है। इनेक पास इतने शस्त्र है कि इनके शिकंजे से बचना नामुमकिन सा लगता है। इनसे हमेशा सतर्क रहना भी चाहिए, क्योंकि ये इतने ताकतवर और चालाक है कि हमें निगलने के लिए षडयंत्र रचते रहते हैं। यहाँ ***अतिक्रमण*** संकलन की ***अथ पुरातन कथा*** नामक कविता के जरिए कवि ने संपूर्ण विश्व अर्थात समूचे मानव जाति व अन्य चराचरों के समक्ष खतरा बनकर अडिग रहनेवाले बाजार की आखेटक वृत्ति का खुलासा किया है –

जो भाग नहीं सकते वे आसान शिकार है मेरा

जो भागते है उनका पीछा करता हूं मैं

जो करते हैं मुकाबला

उनसे होती है थोड़ी बहुत दिक्कत

लेकिन फिलहाल मेरे पास

इतने आयुध हैं इतनी चालाकी

वे मारे जाते हैं

अब एक

निष्णात व्यापारी हूं। ***4***

कुमार अंबुज ने बाजारवाद के इस दौर में साधारण मानव की आर्थिक उलझनों को गम्भीर तटस्थता के साथ देखा है। कवि का कहना है कि बड़े – बड़े बाजार व मॉल के आने पर छोटे छोटे दुकानदारों की दुकान व उनका व्यवसाय मंद हो गया है। पूरे दिन भर सड़क के किनारे अमरूद की डलिया को लेकर बैठने के बावजूद भी डलिया के फल बिना बिके रह गए है। अपनी डलिया के फल जो कभी कुछ ही घंटों में बिक जाते थे, उन्हें आज बेचने में असमर्थ, विवश एवं कुंठित दिखाई पड़ता वह सबसे छोटा दुकानदार अपनी मानसिक व्यथा को किसे कहे। इसका मार्मिक चित्रण ***क्रूरता*** संग्रह के ***आखिरी दुकानदार*** शीर्षक कविता में अभिव्यक्त हुआ है –

अगर ऐसा ही रहा तो अमरूद स्वाद से गायब हो जाएंगे

डलिया सिर पर उठाते हुए बुदबुदाता है बूढा

वह बाजार का सबसे आखिरी दुकानदार

बाजार की सबसे बूढी उम्मीद की तरह

जाता है घर। ***5***

कवि ने बाजारवाद के आगमन के बाद छोटे छोटे उद्योग धंधों को पूरी तरह समाप्त कर देने की पूँजीवादी कुटिल मंशा को अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने अमरूद बेचने वाले इस दुकानदार के माध्यम से छोटा मोटा धंधा करने वाले अनेकानेक ऐसे दुकानदारों का चित्रण किया है, जो इस बाजारीकृत समाज में संकटग्रस्त जिन्दगी गुजार रहे हैं। कवि इनके जीवन पर नजर डालते हुए कहते हैं, कि बाजार में विभिन्न रंग, स्वाद व मनमोहक पैकट वाले विविध कंपनियों के फल उपलब्ध हैं। इनमें कृत्रिम ताजगी दिखाने के लिए अनेक प्रकार के रसायनों का उपयोग भी चढाया जाता है यह जानते हुए भी ग्राहक इन्हें खरीद लेते है। जबकि छोटे छोटे दुकानों के ताजे फल को ग्राहक नजरंदाज कर देते हैं। ब्राण्डेड फल भी आज के ग्राहकों की मांग में अधिक है। यह प्रकरण दर्शाता है कि किस तरह आज का मनुष्य बाजार का गुलाम हो गया है।

अनंतिम काव्य संकलन की **जेब में सिर्फ दो रूपये** कविता बाजार की चमत्कृत दुनिया से तिरस्कृत व उपेक्षित लोगों की व्यथा का बखान करती है। कवि के अनुसार बाजार उन लोगों का है जिनके पास पैसा है। बाजारीकृत दुनिया में निर्धन केवल बेबसी की सिसकियों में अपनी व्यथा कथा का मनन और वाचन करता रहता है। जिसके जेब में रूपयों का खालीपन है, वह बाजार से कुछ भी नहीं खरीद सकता है, अर्थात् वह केवल ग्राहक या उपभोक्ता बन सकता है। विसंगति की इस व्यवस्था का कवि ने इन पंक्तियों में वर्णन किया है–

महज दो रूपये होने की निरीहता बना देती है निरबल

जब चारों तरफ दीख रहा हो ऐश्वर्य

जब चारों तरफ से पड रही हो मार

तब निहत्था हो जाना है जिन्दगी के उस वक्त में

जब जेब में केवल दस रूपये। ***6***

बाजारीकरण के इस समय में आयुर्वेद जैसी भारत की परंपरागत चिकित्साविधि भी अब बिकाउ माल बन गई है। इन पर बडी – बडी मल्टीनेशनल व्यावसायिक कंपनियों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। ये कंपनियां आयुर्वेद औषधियों की बिक्री विज्ञापन के बल पर कर रही है। विज्ञापन से मोहित होकर उपभोक्ता ऊँचे –ऊँचे दामों पर औषधियाँ खरीदते हैं। इसके पीछे मुनाफा कमाने का बाजारवादी अर्थतंत्र छिपा हुआ है। **परमानंद श्रीवास्तव** की दृष्टि में – *"आयुर्वेद पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नजर है। वे देशी प्रकृति संपदा को महंगे दामों पर खरीद रही है। आयुर्वेद का सत्व लेकर उच्चतर चिकित्सा विज्ञान को लाभकारी व्यापार बना रही है। कविता विदेशी पूंजी के प्रभुत्वशाली हस्तक्षेप भूमण्डलीकरण मुक्त बाजार जैसे विषयों पर एक चिंतापूर्ण प्रक्रिया है।"* **7** आज आयुर्वेदिक जडी बूटियाँ वनस्पतियाँ पत्तियाँ फूल बीज इत्यादि से बनाई गई दवाइयाँ बाजार की सबसे कीमती चीज बन गई है–

"च्यवन भी भौचक आत्मा तले

चार रूपये का आँवला बिक रहा है सौ रूपये में" ***8***

यहाँ कवि **आयुर्वेद** शीर्षक कविता के जरिए आयुर्वेदिक दवा निर्माण के पीछे छिपे दिखावा या ढोंग का पर्दाफाश करती है। कवि का कहना है कि इन आयुर्वेदिक औषधियों के उत्पादन के पीछे रोग निग्रह के सदुदेश्य से ज्यादा उपभोक्ताओं की होड़ तथा बाजार के बढ़ते लाभ रहे हैं। इसी ओर इशारा करते हुए अंबुज लिखते हैं –

अब कोई नहीं पहचानता जडी बूटियाँ

जो कहते हैं कि हम पहचानते हैं – वे उद्योग हैं

शहद बनाती है मधुमक्खियाँ

और कंपनियों के डंक **9**

प्रस्तुत कवितांश भारत की आयुर्वेद जैसी परंपरागत चिकित्सा पद्धति पर हमला करती बहुराष्ट्रीय कंपनियों की तिरछी नजर को बेनकाब करती है। आयुर्वेद के समान अब होम्योपैथी भी बाजार से लाभान्वितों के कब्जे में है। बाजार के चंगुल में फंसकर यह पद्धति अपनी उत्कृष्टता को विघटित करती हुई दिखाई पड़ती है। **होम्योपैथी** नामक कविता में कवि ने होम्योपैथी जैसी नाजुक औषधि को नक्कालों एवं विक्रेताओं के फंदे में फंसा हुआ चित्रित किया है–

कि प्रदूषित होते जा रहे इस संसार में

आखिर कैसे जीवित रह पाएगी नाजुक औषधि

होम्योपेथी एक सदय मनुष्यता

जो फंसती ही जा रही है

नक्कालों और विक्रेताओं के जाल में । **10**

कवि ने **सेल्समैन** शीर्षक कविता में एक सेल्समैन के जरिए बाजारू संस्कार के और एक चेहरे का परिचय दिया है। कवि संकेत माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं कि किस प्रकार एक सेल्समैन अपनी कंपनी के लिए बनाए गए सारे वाक्यों का अच्छी तरह प्रयोग करके अपने झोले में एकत्रित सामग्रियाँ बेचता है। अपने काम में मग्न सेल्समैन का चित्र कवि ने यों उभारा है। यहाँ सेल्समेन बाजार में कंपनी के लिए काम करते श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

मगर उसके चेहरे पर अभिनय नहीं

एक तरह के विश्वास में घुली हुई चिंता की तरह

कुछ प्रकाश कुछ अंधेरा था

किसी जादूगर की गति के अभ्यास की चपलता से चुस्त

उसने निकाली झोले से चीजें। **11**

अंबुज की एक अन्य कविता **पेशाबघर** आज के माहौल में भीड़भाड़ भरे सार्वजनिक स्थानों को व्यावसायिक उपयोग कर देने पर व्यंग्य करती है। यह कविता बाजारी दुनिया में विज्ञापन की भूमिका की अलग तस्वीर प्रस्तुत करती है। कविता एक ऐसे पेशाबघर का चित्र खींचती है कि जिसका स्थान बाजार की ऊँची ऊँची दीवारों के पीछे हैं तथा इसके दीवार पर कोकाकोला का विज्ञापन जगमगा रहा है –

बीस कदम की दूरी से भी नहीं लगता था पेशाबघर

उसके दूसरी तरफ थी टेलीविजन की दुकान

वहीं दुकान के आगे फुटपाथ पर रखे हुए थे टेलीविजन के मॉडल

एक के ऊपर एक

लगता था कि किसी का भी स्विच ऑन किया जाए तो

सामने आ जाएगा पेशाबघर की दीवार पर बना हुआ

कोकाकोला का विज्ञापन **12**

इस नई होती दुनिया नामक कविता में कवि ने बाजार के चकाचौंध के बीच मानवीय संवेदना के आधारभूत संदर्भ जैसे प्रेम, करूणा, समन्वय, सदाचार, सादगी आदि गृहस्थ जीवन के विभिन्न पहलुओं के चुपचाप बदल जाने को लेकर भी चिन्ता व्यक्त की है। कवि का मानना है कि यह बाजारी सभ्यता हमारे मानवीय परिचय को भी छीन रही है। हमारा मानवीय जीवन ऐसे मुकाम पर पहुँच गया है कि जीवन के ताल मेल तक उसके हाथों से फिसल रहा है।

जहाँ स्पर्श की कामना और उत्तेजना चिंता के समुद्र में डूब रही है

जहाँ झर रहा है तुम्हारा पराग

टूट रही हैं इच्छाओं की पंखुरियाँ

जहाँ दूर दूर तक नहीं सुनाई पडती कोई तान

यह कौन सी ऋतु है जहाँ शब्दों से छीने जा रहे है उनके अर्थ। **13**

इस प्रकार कवि कुमार अम्बुज ने अपनी कविताओं में बाजार के जकड़न में फंसकर मात्र उपभोक्ता बनते जा रहे मानव का चित्र उकेरा है। कवि ने अपनी कविताओं में तेजी से बाजार बनने वाली प्रक्रिया, बाजार की व्यावसायिक प्रणाली तथा उसकी रीति से समाज को अवगत कराया है। पूँजीवाद अब बाजारवाद के मुखौटे में हमे कुचलने और हमें निगलने आ गया है। यदि हम नहीं संभले तो ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रति निभाये गये उदारवाद ने जिस तरह हमारी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर दिया था। ठीक उसी तरह यह वैश्वीकरण की आड़ में बाजारवाद हमें कहीं का नहीं छोड़ेगा। हमें सतर्क रहना चाहिए। चकाचौंध में दिखाई देने वाली प्रत्येक वस्तु और उसका कारोबार करने वालों की नीयत को भी देखना चाहिए। भारतीय परिवेश में यह कंपनियाँ हमारी मूल व्यापार संस्कृति को हड़पकर अपना प्रभुत्व जमाना चाहती है। हमें अपने स्तर से इसका प्रतिरोध करना चाहिए। कवि इस प्रकार अपना साहित्यिक प्रतिरोध दर्ज कराकर हमारी धराशयी हो रही संस्कृति को बचाने की अपील करते हैं।

सन्दर्भ –

1- कुमार अंबुज – बाजार, क्रूरता, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली द्वितीय संस्करण 2007, पृ. 25
2- कुमार अंबुज – एक बार फिर, अतिक्रमण, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002, पृ. 56
3- कुमार अंबुज – एक बार फिर, अतिक्रमण, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002, पृ. 57
4- कुमार अंबुज – अथ पुरातन कथा, अतिक्रमण, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002, पृ.100
5- कुमार अंबुज – आखिरी दुकानदार, क्रूरता, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली द्वितीय संस्करण 2007, पृ. 93
6- कुमार अंबुज –जेब में सिर्फ दो रूपये,अनंतिम,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008, पृ. 47
7- परमानंद श्रीवास्तव – कविता का अर्थात्, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, आवृत्ति संस्करण 2015, पृ. 246
8- कुमार अंबुज – आयुर्वेद, अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008, पृ. 32
9- वही पृ. 31 – 32
10- कुमार अंबुज – होम्योपैथी, अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008, पृ. 34
11- कुमार अंबुज – सेल्समैन, अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008, पृ. 62
12- कुमार अंबुज – वह पेशाबघर, अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008, पृ. 82
13- कुमार अंबुज – इस नई होती दुनिया में, अनंतिम, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008, पृ.53 –54